CHETANA
International Journal of Education (CIJE)

Peer Reviewed/Refereed Journal
ISSN : 2455-8279 (E)/2231-3613 (P)

Impact Factor
SJIF 2025-8.445

Prof. A.P. Sharma
Founder Editor, CIJE
(25.12.1932 - 09.01.2019)

स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक चिंतन की अवधारणा का अध्ययन

अनन्त कुमार
शोधार्थी
वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर
Email: anantkummartiwari@gmail.com, Mobile-7678668542

First draft received: 05.11.2025, Reviewed: 09.11.2025
Final proof received: 09.11.2025, Accepted: 20.12.2025

सारांश

स्वामी विवेकानंद जी के शिक्षा सम्बन्धी विचार जितने प्रासंगिक आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व थे, उससे कहीं अधिक प्रासंगिक आज के सन्दर्भ में है। स्वामी जी ने पुरजोर तरीके से युवाओं में ब्रह्मचर्य, नैतिकता , अनुशासन ,निडरता ,आत्मविश्वास तथा शारीरिक और मानसिक मजबूती की बात करते थे। ऐसे में स्वामी जी के शैक्षिक विचार ही एक मात्र ऐसा उपाय है जिसको हम अपने शिक्षा व्यवस्था में अपना कर के भारत के युवाओं को इस योग्य बना सकते हैं कि वे भावी जीवन कि चुनौतियों का सामना मजबूती के साथ कर सकते हैं और स्वयं को तो उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ाएंगे ही साथ ही साथ देश को भी विकसित बनायेंगे।

मुख्य शब्द: *राष्ट्रीयता, मनीषी, धर्मानुसार , आध्यात्मिक, जन शिक्षा, संस्कृति, दरिद्र नारायण, एकात्मता ,कर्म–योग आदि.*

प्रस्तावना

19वीं सदी के उत्तरार्ध के भारतीय नवजागरण के अग्रणी नेताओं में स्वामी विवेकानंद का स्थान सबसे शीर्ष पर है। स्वामी विवेकानंद का जन्म सन 1863 में कोलकाता में हुआ था। उनके पिता का नाम विश्वनाथ दत्त था। विवेकानंद जी का बचपन का नाम नरेंद्र था । विवेकानंद जी ने भारतीय धर्म, दर्शन, योग, वेदांत आदि से संबंधित अनेक विषयों पर व्याख्यान दिए और लेख लिखे जिनको पुस्तकों का रूप भी दिया गया है। इतिहासकार एक मत से इस बात को मानते हैं कि 20वीं सदी के शुरुआत में राष्ट्रीय आंदोलन में आए नए मोड में स्वामी जी के कार्यों और संदेश का बड़ा योगदान है। विवेकानंद जी द्वारा भारत की गरिमा को पुनः जगाने का प्रयास मात्र राजनीतिक दासत्व की समाप्ति के लिए नहीं था।

अपितु दासत्व की जो हीन भावना हमारे संस्कार में घुल मिल गई थी उससे भी मुक्ति पाने का मार्ग उन्होंने बताया। विवेकानंद जी निश्चित रूप से बड़े स्वप्न दृष्टा थे। उन्होंने एक नए समाज की कल्पना की थी एक ऐसा समाज जिसमें धर्म या जाति के आधार पर मनुष्य मनुष्य में कोई भेद नहीं रहे। उन्होंने वेदांत के सिद्धांत को इसी रूप में हमारे सामने रखा ताकि मनुष्य मनुष्य का सम्मान करें।

स्वामी विवेकानंद का शैक्षिक दर्शन

महान सन्यासी, शिक्षा- शास्त्री एवं देशभक्त स्वामी विवेकानंद जी का जीवन दर्शन अत्यंत ही प्रेरणादायक है। उनका मानना है कि प्रत्येक व्यक्ति को वीर, निर्भय और कर्मठ होना चाहिए क्योंकि डरे हुए एवं उदासीन व्यक्ति के लिए इस संसार में कोई जगह नहीं है। इसलिए वे युवाओं का आहवाहन करते हुए कहते हैं कि " तुम वीर बनो। तुम निर्भय बनो। भय को दूर करो भय पाप है, उनका जीवन में कोई स्थान नहीं है।" जीवन में वे संघर्ष को ही उत्तम समझते थे। उनका स्पष्ट मत था कि जो व्यक्ति संघर्ष करता है उसी में चैतन्य का विकास होता है।

स्वामी विवेकानंद जी ने अपने समय की शिक्षा व्यवस्था का विरोध किया एवं उसकी निषेधात्मक बताया। उनका मानना था कि विद्यालयों में दी जाने वाली तत्कालीन शिक्षा मनुष्य बनाने वाली शिक्षा नहीं है। वी सिर्फ जानकारी का ढेर देती है जिससे मनुष्य का ना तो शारीरिक विकास होता है ना तो मानसिक विकास होता है। उनका स्पष्ट मानना था कि हमें तो ऐसी शिक्षा चाहिए जिससे चरित्र का निर्माण हो मानसिक विकास हो बुद्धि का विकास हो और व्यक्ति अपने पैरों पर खड़ा हो और जो भाव और विचारों को आत्मसात कराए। उनका स्पष्ट मानना था कि शिक्षा का अर्थ दूसरों के विचारों को याद कर लेना नहीं है अपितु शिक्षा का अर्थ मनुष्य बनाना है।

स्वामी जी का मानना था कि कोई भी व्यक्ति किसी व्यक्ति को कुछ भी सीखा नहीं सकता है। प्रत्येक मनुष्य अपने आप ही सिखाता है। बाहरी व्यक्ति केवल सुझाव दे सकता है या दूसरे शब्दों में कहे तो ऐसा वातावरण निर्मित कर सकता है कि सामने वाला व्यक्ति सीखने के लिए सहज महसूस करें। जिस प्रकार से कोई व्यक्ति किसी पौधे को खींचकर के बड़ा नहीं कर सकता है किसी वृक्ष को हिला करके उसमें फल नहीं लगा सकता है वैसे ही हम किसी बालक को जबरदस्ती शिक्षित नहीं कर सकते हैं या यूँ कहे कि कुछ भी सीखा नहीं सकते हैं। स्वामी विवेकानंद जी के अनुसार शिक्षा का संपूर्ण

कार्य मन की एकाग्रता में है। एकाग्रता की शक्ति जितनी अधिक होगी ज्ञान की प्राप्ति भी उतनी ही अधिक होगी। अतः प्रत्येक कार्य की सफलता इसी बात पर निर्भर करती है। स्वामी जी के अनुसार शिक्षा से आशय-

"यदि शिक्षा का अर्थ सूचनाओं से होता तो पुस्तकालय संसार के सर्वश्रेष्ठ संत होते तथा विश्व कोष ऋषि बन जाते।"

उनके अनुसार, "शिक्षा उसे सन्निहित पूर्णता का प्रकाश है जो मनुष्य में पहले से ही विद्यमान है।"

" Education is the manifestation of the perfection, already present in man." - Swami Vivekanand

रामकृष्ण मिशन के उद्देश्य

1. सनातन धर्म में पुनः आस्था जागृत करना।

2. नर सेवा ही नारायण सेवा है इस भाव का प्रचार- प्रसार करना।

3. वेदांत की शिक्षा का प्रचार- प्रसार करना।

4. सामाजिक सद्भाव स्थापित करना।

5. भारत की युवा पीढ़ी को चारित्रिक, मानसिक एवं शारीरिक रूप से समृद्धि करना।

6. मनुष्य के प्रति दयालु होना ईश्वर की प्रति दयालु होना है।

7. समाज के अंतिम वर्ग के लोगों की सेवा करना।

स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक चिंतन की वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिकता

स्वामी विवेकानंद वेदांत दर्शन में विश्वास करते थे। वेदांत के तीन रूप हैं द्वैत, विशिष्टा- द्वैत और अद्वैत । उनके अनुसार ईश्वर सर्वशक्तिमान निराकार और एक है। स्वामी जी अद्वैतवादी हैं। स्वामी जी के अनुसार मनुष्य में ईश्वरी सट्टा की अधिकतम अभिव्यक्ति मिलती है। उनके अनुसार मनुष्य परमात्मा का अंश है तथा मानव सेवा ही ईश्वर सेवा है। मानव की सच्ची प्रकृति आध्यात्मिक ही है वह ईश्वर की सर्वोच्च रचना है उसमें जन्म से ही पूर्णता विद्यमान रहती है और उसमें आध्यात्मिक स्वरूप को समझने की अद्भुत शक्ति होती है। स्वामी विवेकानंद जी का मानना है कि ईश्वर अनंत अस्तित्व, अनंत ज्ञान और अनंत आनंद है ।यह तीनों एक ही है।

यह बात स्पष्ट है कि स्वामी जी ईश्वरी सत्ता में विश्वास करते थे। स्वामी जी सृष्टि के करता ब्रह्मा को मानते थे किंतु वे माया और जगत को भी सत्य मानते थे। भला सत्य से सत्य की उत्पत्ति कैसे हो सकती है? वे वस्तु जगत तथा आत्मा में भी विश्वास करते थे तथा मनुष्य का अंतिम उद्देश्य आत्मा अनुभूति ईश्वर की प्राप्ति तथा मोक्ष है।

स्वामी जी ज्ञान को मुख्यतः दो रूपों में विभाजित करते हैं वास्तु जगत का ज्ञान तथा आत्म तत्व का ज्ञान। मनुष्य को इन दोनों प्रकार की ज्ञान को प्राप्त करना चाहिए। वस्तु जगत के ज्ञान से इनका अभिप्राय भौतिक ज्ञान से है जिसमें वस्तुओं एवं क्रियाओं के ज्ञान को रखा जाता है और आत्म तत्व का ज्ञान से इनका आशय आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति से है जिसमे परमात्मा आत्मा और जीवात्माओं के ज्ञान को सम्मिलित किया जाता है।

स्वामी जी का मानना था कि मनुष्य आत्मा धारी है और आत्मा का अंतिम लक्ष्य परमात्मा की प्राप्ति या मोक्ष या आत्म साक्षात्कार ही होता है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ज्ञान योग, कर्म योग और भक्ति योग आवश्यक है। स्वामी जी मानव को ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट रचना मानते थे । स्वामी जी मानव जीवन में निर्भयता, सत्यता और स्वतंत्रता को आवश्यक मानते थे। उन्होंने हृदय की शुद्धता और सत्यता परबल दिया है । वह कहते थे कि ईश्वर हृदय के माध्यम से ही हमको संदेश देता है। इसलिए मनुष्य मात्र को उन्होंने यह संदेश दिया था-" तुम वीर बनो तुम निर्भय बनो भय को दूर करो भय पाप है भय का जीवन में कोई स्थान नहीं है।"

जन- शिक्षा

स्वामी जी जन- शिक्षा पर अत्यधिक बल देते थे। देश के पुनरुत्थान के लिए जनसाधारण की शिक्षा को अनिवार्य बताते हुए उन्होंने लिखा है "मेरे विचार से जनसाधारण की अवहेलना करना महान राष्ट्रीय पाप और हमारे पतन का कारण है। जब तक भारत की सामान्य जनता को एक बार फिर अच्छी शिक्षा, अच्छा भोजन और अच्छी सुरक्षा नहीं प्रदान की जाएगी तब तक अधिक से अधिक राजनीति भी व्यर्थ होगी वे हमारी शिक्षा के लिए धन देते हैं ,वह हमारे मंदिरों का निर्माण करते हैं ,पर उनकी बदले में उन्हें मिलता क्या है ?मात्र ठोकरे। वे हमारे दासों के समान हैं। यदि हम भारत का पुनरुत्थान करना चाहते हैं तो हमें उनको शिक्षित करना होगा।"

झूठ की उत्पत्ति भय से होती है। भयग्रस्त व्यक्ति झूठ बोलता है। झूठ बोलने के अनेक कारण हो सकते हैं लेकिन प्रत्येक कारण के पीछे भय ही होता है।

यदि सत्य बोल दिया तो लोग हमारा सम्मान नहीं करेंगे, यदि सत्य बोल दिया तो हमारी आर्थिक क्षति हो जाएगी, यदि सत्य बोल दिया तो हमें यह पद नहीं प्राप्त होगा और यदि सत्य बोल दिया तो मिला हुआ पद भी चला जाएगा, यदि सत्य बोल दिया तो लोग हमें छोड़ देंगे। ऐसे अनेक कारण हैं लेकिन सभी के पीछे भय है। भय और सत्य का साथ कभी नहीं हो सकता, क्योंकि यदि सत्य का बोध हो गया तो भय नहीं और यदि भय है तो सत्य का बोध नहीं।

सृष्टि अज्ञान से उत्पन्न है इसलिए उसका भय से संचालित होना स्वाभाविक है। ज्ञान की सर्वोच्च अवस्था अभिः भयमुक्ति है, लेकिन लोक-व्यवहार का आधार भय है, क्योंकि लोक का प्रत्येक व्यक्ति ज्ञानी नहीं होता और अज्ञानी भय के द्वारा ही शासित होता है। इसलिए वह ईश की प्रेरणा नहीं बल्कि ईश के भय से संचालित होता है, जो ईश की प्रेरणा से संचालित होता है वह कभी भयग्रस्त नहीं होता, लेकिन प्रेरणा भी उतनी ही प्राप्त होती है जितना बोध होता है। भक्ति में भाव का बोध होना चाहिए, कर्म में कर्त्तव्य का बोध होना चाहिए और ज्ञान में ज्ञेय का बोध होना चाहिए अर्थात् बोध तो सभी के लिए सत्य है।

स्वामी जी का स्पष्ट मत है कि जनसाधारण की शिक्षा उनकी निजी भाषा में ही होनी चाहिए । उनका विचार है कि यदि गरीब बालक शिक्षा लेने नहीं आ सकता तो शिक्षा को उसके पास पहुंचना चाहिए। स्वामी जी सुझाव देते हैं कि यदि सन्यासियों में से कुछ को धर्म संबंधी विषयों की शिक्षा देने के लिए संगठित कर लिया जाए तो बड़ी सरलता से घर-घर घूम कर के हुए धर्म संबंधी विषयों की शिक्षा देने की साथ-साथ सामान्य अध्यापन कार्य भी कर सकते हैं।

शिक्षा के उद्देश्य

स्वामी जी का स्पष्ट मत है कि ज्ञान बाहर से नहीं आता बल्कि वह तो मनुष्य के भीतर ही होता है। इस अंतर निहित ज्ञान अथवा पूर्णता की अभिव्यक्ति करना ही शिक्षा है। लौकिक तथा आध्यात्मिक सभी प्रकार का ज्ञान मनुष्य के मन में पहले से ही विद्यमान रहता है। अतः शिक्षा को मनुष्य के अंदर निहित ज्ञान अथवा पूर्णता की अभिव्यक्ति करनी चाहिए।

स्वामी जी का मानना था कि लोक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए स्वस्थ शरीर की आवश्यकता होती है इसलिए हमें बलिष्ठ लोगों की आवश्यकता है जिनकी पेशियां लोहे के

समान दृढ़ हो और स्नायु फौलाद की तरह कठोर ताकि मनुष्य आध्यात्मिक और भौतिक दोनों ही प्रकार की शिक्षा को ग्रहण कर सके।

विवेकानंद जी के अनुसार भारत के पिछड़े पन का सबसे बड़ा कारण उसका बौद्धिक पिछड़ापन हीं है और इस कमी को दूर करने के लिए बालकों का मानसिक तथा बौद्धिक विकास किया जाए ताकि वह अपने पैरों पर खड़े हो सके और जीवन की चुनौतियों का बहादुरी से सामना कर सकें।

स्वामी जी के अनुसार सभी प्रकार के क्रियाकलाप एवं सभी प्रकार के आयोजन या प्रबंधन या नीति निर्माण का मूल उद्देश्य मनुष्य को मानवता की शिक्षा देना ही है ताकि वह अपने साथ-साथ अपने परिवार समाज राष्ट्र एवं विश्व के लिए कल्याणकारी हो सके अर्थात शिक्षा का मूल उद्देश्य मनुष्य का निर्माण करना है।

स्वामी जी का स्पष्ट मत है कि मानसिक एवं शारीरिक विकास के साथ-साथ व्यक्ति का चरित्र उच्च कोटि का होना चाहिए तभी वह समाज में एवं स्वयं के भीतर भी सच्चा बदलाव ला सकता है । वह स्वयं कहते हैं कि "हमें उसे शिक्षा की आवश्यकता है जिसके द्वारा चरित्र का निर्माण होता है मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती है बुद्धि का विकास होता है और मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है।"

महात्मा गांधी भी बलपूर्वक कहते हैं कि "सच्ची शिक्षा वह है जो स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त करती है। केवल वही उच्च शिक्षा है जो हमें अपने धर्म का संरक्षण करने के लिए समर्थ बनती है । पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृत के अंधा अनुकरण के कारण भारतीय शिक्षा में विदेशी पान का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। एसएससी भारत का उत्थान संभव नहीं है। मां-बाप आचार्य सब ने प्राचीन आदर्श और मूल्यों का परित्याग कर दिया है जिसकी कारण विद्यार्थियों में भी मूल्य बोध का ह्रास हुआ है।"

स्वामी विवेकानंद का मानना है कि अनंत शक्ति ही धर्म है। बल पुण्य है दुर्बलता पाप है सभी पापों और बुराइयों के लिए एक ही शब्द पर्याप्त है और वह है दुर्बलता।

इस प्रकार शिक्षा का मूल उद्देश्य मनुष्य को सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाना है। जो शिक्षा मानवीय सद्गुणों के विकास में सहयोग नहीं देती और व्यक्ति के सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त नहीं करती वह शिक्षा बेकार है।

विवेकानंद जी द्वारा स्वीकृत शिक्षण विधि

शिक्षण विधि के संबंध में स्वामी जी का विचार था कि धर्म की विशेष पद्धति द्वारा शिक्षा देनी चाहिए। धर्म शिक्षण विधि का आधार होना चाहिए। इस दृष्टिकोण से शिक्षण विधि पर अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा है कि "ज्ञान प्राप्त करने की सबसे उत्तम विधि एकाग्रता है। मां की एकाग्रता में शिक्षा का सार है। ज्ञानार्जन के लिए निम्नतम श्रेणी के मनुष्य से लेकर उच्चतम योगी तक को इस विधि का अवलंबन करना पड़ता है।"

शिक्षा का माध्यम सभी के लिए निसंदेह मातृभाषा ही होनी चाहिए प्रोग्राम स्वामी जी शिक्षा को घर-घर और जन-जन तक पहुंचाना चाहते थे इसलिए वे शिक्षा के प्रचार प्रसार के लिए साधारण बोलचाल की भाषा का प्रयोग ही व्यवहारिक मानते हैं। बुद्ध कल से लेकर चैतन्य तथा रामकृष्ण तक जो भी महापुरुष हुए उन्होंने अपने उपदेश और शिक्षाएं सामान्य जनों की बोल चाल की ही भाषा में दी।

स्वामी विवेकानंद का स्पष्ट मत है कि हम जिस भाषा के माध्यम से अपना जीवन जीते हैं उसी भाषा के माध्यम से सभी विधाओं को विकसित भी कर सकते हैं। भाषाओं की जटिलताएं जनसाधारण को ज्ञान प्राप्त करने में सदैव बाधक रही हैं। विवेकानंद जी संस्कृत भाषा की श्रेष्ठता को सदैव स्वीकार करते थे। वे कहते हैं की साधारण बोलचाल की भाषा में शिक्षा देना तो उत्तम है ही किंतु हम संस्कृत भाषा की उपेक्षा नहीं कर सकते क्योंकि संस्कृत शब्दों की ध्वनि मात्र ही राष्ट्र को एक प्रकार की प्रतिष्ठा, शक्ति एवं तेज प्रदान करती है। शिक्षक को भी शिक्षण विधियों में सरल भाषा का अधिकतम प्रयोग करना चाहिए।

स्वामी जी का विचार था की पुस्तक पढ़ने की अपेक्षा सुनने और देखने से अधिक ज्ञान प्राप्त हो सकता है। इसलिए उन्होंने कहानी सुनना,भ्रमण करना, तर्क अथवा विचार-विमर्श तथा धर्मोपदेश सुनना आवश्यक बताया।

मनुष्य जाने अनजाने में ही अपने चारों ओर के समाज से संस्कार ग्रहण करता रहता है। उसमें समाज का प्रत्येक व्यक्ति शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों ही रूपों में एक साथ सक्रिय रहता है और यह प्रक्रिया जीवन पर्यंत चलती रहती है। उनके अनुसार जन्म भर पुस्तकों के द्वारा जो जानकारी प्राप्त हो सकती है उसे सौ गुना अधिक कार्यों के द्वारा सिखाया जा सकता है। इसकी अतिरिक्त उन्होंने अनुभव द्वारा एवं रचनात्मक कार्यों द्वारा ज्ञान ग्रहण करने पर भी बल दिया है।

शिक्षा द्वारा बालक का आध्यात्मिक विकास

स्वामी विवेकानंद का स्पष्ट मत है कि भारतीय दर्शन के अनुसार जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य आध्यात्मिक ही है।

सामान्यतः लोगों के मन में एक द्वंद रहता है कि अध्यात्म और व्यवहार दोनों एक साथ नहीं साधा जा सकता। जब कोई अध्यात्म साधने का प्रयास करता है तो व्यवहार बिगड़ जाता है और जब व्यवहार को साधने का प्रयास करता है तो अध्यात्म बिगड़ जाता है। इसी धारणा के कारण लोग इस दिशा में सोचना भी नहीं चाहते।

अध्यात्म का अर्थ ही यह मान लिया गया है कि जो कुछ विचित्र व्यवहार करे वही आध्यात्मिक है। अध्यात्म की बातें और अध्यात्म का जीवन यह दो पक्ष है। तर्क और बातें बुद्धि के धरातल पर होती हैं और व्यवहार अनुभूति के धरातल पर।

हम हैं इसके लिए हमें किसी तर्क की आवश्यकता नहीं है। हमें इसके लिए बुद्धि का भी प्रयोग नहीं करना पड़ता। हमारी अनुभूति ही हमारे होने का प्रमाण है, इसलिए अहं (मैं) की सिद्धि स्वतः सिद्ध है, लेकिन व्यवहार की समस्या तब खड़ी होती है जब (सः) दूसरे की सिद्धि करनी होती है। दूसरे की सिद्धि में ही बुद्धि और तर्क के प्रयोग की आवश्यकता होती है।

बुद्धि और तर्क जब तक अनुभूति की अवस्था तक नहीं पहुंच जाते तब तक ज्ञान में परिवर्तित नहीं हो सकते और जब बोध (ज्ञान) हो जाता है तब तर्क और बुद्धि की उसी प्रकार आवश्यकता नही होती जिस प्रकार स्वयं के बोध के लिए नहीं होती।

यह सः और अहं का भेद ही परमार्थ और व्यवहार का भेद है। सोऽहं को तर्क से समझाना आसान है, लेकिन 'सः' में 'अहं' और 'अहं' में 'सः' की अनुभूति कठिन है। इसे समझ लेने के बाद भी अनुभूति तक पहुंचने में कई जन्म भी लग सकते हैं।

होता यह है कि जब हम मौखिक तर्क के आधार पर सः और अहं को एक मान लेते हैं, लेकिन वह हमारी अनुभूति का विषय नहीं होता तो हम अपनी सुविधा के अनुसार विचित्र-विचित्र बात किया करते हैं। फिर न हमारा व्यवहार सध पाता है और न ही परमार्थ। बस उन अजूबे बातों और व्यवहार को ही देख-सुनकर लोग परम ज्ञानी मानने लगते हैं।

यथार्थ यह है कि 'अहं' और 'सः' की अभेद अनुभूति व्यवहार की बाधक नहीं होती अपितु वह जिस व्यवहार को सिद्ध करती है वही

धर्म है, इस धर्म की संस्थापना के लिए तत्त्वदर्शी मनीषियों का आविर्भाव होता है। इस तत्त्वदृष्टि का प्रतिपादन करनेवाले वैदिक ऋषि हों या गीतोपदेष्टा भगवान कृष्ण इनमें से कोई भी विचित्र व्यवहार वाले नहीं थे। सभी संतुलित और सम्यक व्यवहार करते थे, लेकिन आजकल लोगों को यह लगता है कि आध्यात्मिक होने का अर्थ कुछ अस्वाभाविक या विचित्र होना ही है।

अनुशासन

विवेकानंद जी गुरु ग्रह प्रणाली के पक्षधर थे। वह यह अनुभव करते थे कि आधुनिक परिस्थितियों में विद्यालय प्रकृति की गोद में यानी शहर के कोलाहल से दूर नहीं बसाया जा सकते हैं इसलिए उन्होंने इस बात पर बोल दिया कि विद्यालय का पर्यावरण शुद्ध होना चाहिए और वहां अध्ययन ,अध्यापन ,खेलकूद और व्यायाम के साथ साथ भजन कीर्तन की भी व्यवस्था होनी चाहिए। हालांकि विवेकानंद जी आदर्शवादी थे परंतु उनके अनुशासन संबंधी विचार प्रकृति वादी से मिलते जुलते हैं। उनका मानना है कि ना तो बालक को किसी प्रकार का शारीरिक दंड देना चाहिए अन्य शिक्षा के लिए उसे पर अनुचित दबाव डालना चाहिए। क्योंकि स्वतंत्रता उन्नति की प्रथम सामग्री है इसलिए बालकों को सीखने के लिए पर्याप्त स्वतंत्रता देनी चाहिए। उन पर कठोर नियंत्रण नहीं रखना चाहिए अपितु सहानुभूति के साथ उन्हें सीखने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए और स्वानुशासन की शिक्षा देनी चाहिए।

शिक्षक शिक्षार्थी संबंध

स्वामी विवेकानंद बालकों को शिक्षित करने में शिक्षक के अधिक हस्तक्षेप को स्वीकार नहीं करते हैं। उनका मानना है कि बालक को अधिकतम समय करके सीखने या अनुभव से सीखने के लिए मिलना चाहिए। क्योंकि वेदांत का सिद्धांत है कि मनुष्य के अंदर ही ज्ञान का समस्त भंडार निहित है एक अबोध शिशु में भी केवल उसको जागृत करने में शिक्षक की प्रेम पूर्ण सहयोग की आवश्यकता है।

स्वामी विवेकानंद जी कहते हैं - अधिक हस्तक्षेप मत करो। अपनी सीमा के भीतर रहो और सब स्वाभाविक प्रक्रिया से ही ठीक हो जाएगा। सच्चा शिक्षक वही है, जो क्षण भर में ही अपने को हजारों व्यक्तियों में परिणत कर सके। ऐसा ही आचार्य शिक्षा दे सकता है, दूसरा नहीं । क्योंकि सच्चा शिक्षक वही है जो छात्र को सीखने के लिए तत्काल इस की दृष्टि से देख सके उसी के कानों से सुन सके तथा उसी के मस्तिष्क से समझ सके।

शिक्षक की अविश्वसनीयता शिक्षा के लिए अभिशाप है। आज की शिक्षा व्यवस्था की दृष्टि में शिक्षक सबसे अविश्वसनीय बन चुका है। पूरी व्यवस्था शिक्षा को सुधारने के लिए शिक्षक को सुधारने में ही अपनी अधिकांश ऊर्जा नष्ट कर रही है। शिक्षक को कैसे कर्मशील बनाया जाए इसके लिए तरह-तरह के कार्य दिए जा रहे हैं, यहाँ तक कि अवकाश के दिन भी उनके ऊपर कार्य थोपा जा रहा है। अब प्रश्न उठता है कि जिसका चरित्र स्वयं संदेह के घेरे में है वह दूसरे के चरित्र का क्या निर्माण करेगा?

राष्ट्र निर्माता के उपाधि धारक शिक्षक के व्यक्तित्व को संदिग्ध मानने में केवल तंत्र की ही एक पक्षीय भूमिका नहीं है, इसमें कहीं न कहीं शिक्षक स्वयं उत्तरदायी है।

शिक्षा कोई यांत्रिक गतिविधि नहीं है, बल्कि यह एक जीवन्त बौद्धिक मानसिक और व्यावहारिक संप्रेषण है। शिक्षा को डिजिटल बनाकर सूचना का सम्प्रेषण तो किया जा सकता है, लेकिन शिक्षा की प्रविधि और उद्देश्य इससे पूरा नहीं होगा, क्योंकि शिक्षा यांत्रिक नहीं एक जैविक क्रिया और चेतना का प्रवाह है।

लोगों को सदैव संदिग्ध मानकर आप उनसे शिक्षक होने की कल्पना नहीं कर सकते। उनमें कर्तव्यबोध कैसे उत्पन्न हो यह चिन्ता और प्रयत्न का विषय हो सकता है, लेकिन उनसे अधिक से अधिक काम कैसे लिया जाए इसके लिए अनावश्यक पत्रावली भरवाना, अन्य गतिविधियों में सम्मिलित करना, उन्हें निरन्तर व्यस्त रखने का प्रयास करना एक स्वस्थ शिक्षा का वातावरण नहीं उत्पन्न कर सकता।

शिक्षा श्रम नहीं एक भाव है और शिक्षक श्रमिक नहीं एक प्रेरक है। शिक्षक की भूमिक को स्वस्थ किए बिना शिक्षा स्वस्थ नहीं हो सकती। जिस दिन समाज में शिक्षक एक विश्वसनीय व्यक्ति के रूप में खड़ा होगा उस दिन शिक्षा स्वयं खड़ी हो जाएगी।

स्वामी जी के अनुसार शिक्षक को संयमी आत्मज्ञानी परिश्रमी एवं उच्च चरित्र वाला होना चाहिए जिससे बालक उसका अनुकरण करके आदर्श मानव बन सके । शिक्षक को बालक से निकट घनिष्ठ और व्यक्तिगत संबंध स्थापित करना चाहिए। शिक्षक को बालक की ज्ञान प्राप्ति के मार्ग में आने वाले सभी प्रकार की कठिनाइयों को को दूर करना चाहिए।

शिक्षक द्वारा बालक को इस प्रकार के सभी अवसर प्रदान करने चाहिए जिसे वह अपने हाथ पैर कान आंख आदि का प्रयोग करके अपनी बुद्धि का विकास कर सके। शिक्षक को कभी इस बात का आभास नहीं होना चाहिए कि वह बालक को शिक्षा दे रहा है क्योंकि इससे शिक्षा का उद्देश्य नष्ट हो जाता है। स्वामी जी के अनुसार गुरु शिष्य का संबंध केवल सांसारिक ही नहीं होना चाहिए अपितु उन्हें एक दूसरे के दिव्य स्वरुप को भी देखना चाहिए। विवेकानंद जी का मानना था की ज्ञान चाहे भौतिक हो या आध्यात्मिक उसको प्राप्त करने के लिए शिक्षार्थियों द्वारा ब्रह्मचर्य का पालन करना अनिवार्य है। ब्रह्मचर्य के पालन द्वारा ही बालक अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण रख सकता है और सीखने की प्रबल इच्छा के द्वारा वह गुरु में श्रद्धा के भाव रखते हुए सत्य को जानने का प्रयास करता है तभी वह ज्ञान प्राप्त कर सकता है। बाल्यावस्था से ही उज्ज्वल चरित्र वाले किसी तपस्वी महापुरुष के सानिध्य में रहना चाहिए ताकि उच्चतम ज्ञान का जीवंत आदर्श आंखों के सामने रहे। केवल यह पल लेने से की झूठ बोलना पाप है कोई लाभ नहीं है। हर एक को पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए तभी हृदय में श्रद्धा भक्ति का उदय होगा। जिस व्यक्ति में श्रद्धा भक्ति नहीं होगी वह तो झूठ बोलेगा ही बोलेगा । भारतीय परंपरा में शिक्षक के लिए आचार्य शब्द का प्रयोग किया जाता है आचार्य अर्थात एक ऐसा व्यक्ति जो अपने शिष्य को अपने आचरण के द्वारा प्रभावित करता है संस्कारीत करता है एवं परिमार्जित भी करता है।

धर्म और शिक्षा

धर्म कोई चमत्कार नहीं है और न ही चमत्कार में कोई धर्म है। जो लोग धर्म में चमत्कार खोजते हैं यथार्थ में वे धार्मिक नहीं होना चाहते। वे धर्म के माध्यम से अपने ऐसे भोग की प्राप्ति चाहते हैं जिसे वे कर्म से नहीं प्राप्त कर सकते या उनके कर्मफल में नहीं है।

धर्म भोग की मर्यादा है। अर्थ और काम का नियमन ही धर्म है। संयमित अर्थोपार्जन और संयमित भोग, जो समाज और प्रकृति में असंतुलन उत्पन्न न करे, सामंजस्य को भंग न करे वही धर्माचरण है।

इस संतुलन की स्थापना को ही शास्त्र में यज्ञ कहा गया है।

'यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो

मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः'

यज्ञ के अवशिष्ट को खाने वाला सभी पापों से मुक्त हो जाता है अर्थात् ऐसा भोग करने वाला जिससे किसी व्यक्ति, समाज या प्रकृति का कोई क्षय न हो वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

लेकिन जो इन सब को दुर्लक्ष्य करके अपने लिए ही पकाता है अर्थात् केवल अपने भोग की ही चिन्ता में लगा रहता है वह पाप को ही खाता है।

भुञ्जते ते त्वघं पापा

ये पचन्त्यात्मकारणात्।।

अतः,धर्म में कोई चमत्कार नहीं है। धर्म में सावधानी है, मर्यादा है और संयम है। धर्म में जो चमत्कार खोजते हैं वे प्रलोभनों के वशीभूत अधर्म मार्ग के पथिक हो जाते हैं।

उपनिषद केवल भारतीय या हिन्दू ही नहीं विश्व में मानव द्वारा किए गए विचार के चरमोत्कर्ष (climax) हैं। वास्तव में उपनिषद को विचार भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उपनिषद ऋषियों के मानस की एक अवस्था हैं जो विचारों की सीमा के परे अपरोक्ष अनुभूति हैं। उपनिषद पुस्तक भी नहीं है बल्कि उपनिषद वह अवस्था है जो उसके अध्ययन और मनन के पश्चात उत्पन्न होती है। ऋषियों ने इसे वाणी द्वारा व्यक्त किया इसलिए उन शब्दों को, उन विचारों को और पुस्तकाकार रूप लेने के पश्चात् पुस्तकों को उपनिषद की संज्ञा प्राप्त हुई।

वैसे उपनिषद की संख्या सौ से ऊपर है लेकिन आदि शंकराचार्य ने जिन दस उपनिषदों पर भाष्य लिखा वह प्रस्थानत्रयी के अन्तर्गत आते हैं और उन्हीं का अधिक अध्ययन और चिन्तन होता है। ये उपनिषद हैं- ईश, केन, कठ,प्रश्न, ऐतरेय, तैत्तिरीय, मुण्डक, माण्डूक्य,छान्दोग्य और वृहदारण्यक। दो और उपनिषदों कैवल्य एवं श्वेताश्वतर का भी साधकों द्वारा अभ्यास एवं चिन्तन प्रचलित है।

इन उपनिषदों में- ऐतरेय ऋग्वेद से है। ईश, कठ, वृहदारण्यक और तैत्तिरीय यजुर्वेद से हैं। इसमें भी ईशोपनिषद शुक्ल यजुर्वेद कण्व शाखा के संहिता भाग से है।यह वेद के संहिता भाग से एकमेव उपनिषद है। बृहदारण्यक उपनिषद भी शुक्ल यजुर्वेद से है और कठ, तैत्तिरीय यह कृष्ण यजुर्वेद से हैं। छान्दोग्य और केन सामवेद से हैं और मुण्डक, माण्डूक्य और प्रश्न अथर्ववेद के उपनिषद हैं।

उपनिषदों का अध्ययन केवल पुस्तक की तरह नहीं किया जा सकता। उपनिषदों को समझने के लिए अध्ययन से अधिक मनन की आवश्यकता होती है। अद्वैत दर्शन में उपनिषदों की शब्दावली को समझने के लिए प्रकरण ग्रन्थों का अभ्यास भी आवश्यक है। ये प्रमुख हैं- अद्वैतमकरन्द , दृग्दृश्य विवेक, विवेकचूड़ामणि, पंचदशी, अपरोक्षानुभूति, आत्मबोध,तत्वबोध, मनीषापंचकम्, वाक्यवृत्ति आदि हैं।

शंकराचार्य की परम्परा में शंकराचार्य के भाष्य की व्याख्या के लिए वार्तिक और टीकायें लिखी गईं। सुरेश्वराचार्य जिनका संन्यास पूर्व नाम मण्डन मिश्र था उन्होंने वार्तिक लिखा, जबकि वाचस्पति मिश्र और आनन्द गिरि ने टीका। ये दोनों टीकायें अलग-अलग प्रस्थान के रूप में जानी जाती हैं। वाचस्पति मिश्र ने अपनी टीका का नाम अपनी पत्नी भामती के नाम पर भामती प्रस्थान दिया, जबकि अनान्द गिरि की टीका को विवरण प्रस्थान के नाम से जाना जाता है। इन ग्रन्थों के अध्ययन के साथ मनन और ध्यान-साधना द्वारा निदिध्यासन ही उपनिषदों के ज्ञान का साधन है।

उपनिषद ही सनातन धर्म का वह अमृत है जो केवल हिन्दुओं को ही नहीं सम्पूर्ण मानवता को अमरत्व का संदेश देता है, क्योंकि यह पुस्तकों के परे का वह ज्ञान है जो प्रज्ञा के चरमोत्कर्ष के पश्चात प्राप्त होता है, जिसका बोध लोक की समस्त वासनाओं और द्वन्दों के परे हुआ है, जिसकी अनुभूति समस्त आग्रहों से मुक्त होने के पश्चात होती है।

प्रत्येक व्यक्ति को लगता है कि हम दुनिया को कुछ सिखा सकते हैं या दुनिया को हमसे सीखना चाहिए। बस यहीं से थोपने की बाड़ाबंदी प्रारम्भ हो जाती है। दुनिया को सीखाना ही दुनिया के लिए अभिशाप बन गया है। दुनिया जिसे देख कर स्वयं सीख ले वही दुनिया के लिए वरदान है।

सूर्य किसी को प्रकाशित करने के लिए नहीं उदित होता, उसका उदय होना ही प्रकाश है। वह प्रकाशित करने के लिए हठ नहीं करता, कोई दबाव भी नहीं डालता, लेकिन उसकी उपस्थिति ही प्रकाशित कर देती। ऐसे ही समाज का यथार्थ प्रेरक वह होता है जो प्रेरित नहीं करता, उसकी उपस्थिति ही प्रेरित कर देती है।

जिसका व्यक्तित्व सूर्य की तरह निष्कलुष हो वह स्वतः प्रकाशित करता है। प्रकाशित करने के लिए प्रकाशवान बनना पड़ता है। जो स्वतः प्रकाशवान नहीं है वह दूसरों को क्या प्रकाशित करेगा।

लोग यह सोचते हैं कि हम पूरे समाज को बदल दें और स्वयं यथावत बने रहें वे ही दुनिया में संघर्ष के कारण हैं। समाज को वही लोग बदल सकते हैं जो किसी को बदलने की इच्छा छोड़ कर पहले स्वयं बदलने में विश्वास करते हैं।

यही कारण है कि धर्म आदेश नहीं, प्रेरणा है। यदि आदेशित कर्म में भवना नहीं है तो वह धर्म नहीं मात्र क्रिया है और भावना का संचार आदेश से नहीं प्रेरणा से ही होता है, इसलिए प्रेरणा के संचार के लिए स्वयं प्रेरक बनना पड़ता है।

ज्ञान और भक्ति का संबंध

सामान्यतः जगत में ऐसा प्रचारित किया जाता है कि ज्ञान मार्ग का पथिक भक्त नहीं होता और भक्त ज्ञानी नहीं होता।

विशेष रूप से यह कार्य वे लोग करते जो भक्ति के नाम पर छल, कपट और धूर्तता में संलग्न रहते हैं। वे ऐसा प्रचारित करना चाहते है कि ज्ञान की धारा में चलने पर भक्ति, निष्ठा और श्रद्धा खण्डित होती है।

वे तर्क का विरोध करते हुए भी स्वयं तर्क कर रहे होते हैं और ज्ञान का विरोध करते हुए स्वयं एक विशेष ज्ञान का राग अलाप रहे होते हैं।

इसके पीछे उनका विशेष मन्तव्य होता है। वे अपने लिए अपनी सुविधा के अनुसार सुरक्षित प्रणाली (Safe mode) में रहना चाहते हैं, क्योंकि यदि वे कुछ अनर्गल राग अलाप रहे हों और सामने वाला उसका प्रतिकार कर दे तो कह सकें कि ये तो ज्ञानमार्गी हैं, भक्ति और निष्ठा को क्या समझेंगे।

जगत का यथार्थ यह है कि बिना ज्ञान के भक्ति नहीं हो सकती, क्योंकि भक्ति के प्राथमिक स्तर पर भी भक्त को भगवान का बोध तो होना ही चाहिए। वह किसकी भक्ति कर रहा है, क्यों भक्ति कर रहा है और कैसे भक्ति कर रहा है यह भी बोधजन्य है। भक्त और भगवान का अभेद यह भी एक बोध है। भक्ति की प्रगाढ़ता भगवान के बोध के साथ प्रगल्भ होते जाती है और भक्ति का अन्तिम पर्यवसान भक्त और भगवान के अभेद में हो जाता है।

ज्ञान मार्ग के मुकुटमणि आदि शंकराचार्य भी भक्ति मार्ग के भी उतने ही बड़े साधक थे। उनसे अधिक स्तुतियाँ शायद ही किसी ने लिखी हों। अद्वैतमत के प्रचार के साथ उन्होंने पंचायतन पूजा का भी विधान किया। उनकी स्तुतियों में जो भाव की धारा प्रस्फुटित होती है वैसी धारा शायद ही किसी अन्य स्तुति में प्रस्फुटित होती है। जब तक व्यवहार है तब तक भक्ति का पुरुषार्थ है और जब परमार्थ है तब केवल भगवान है।

दुनिया के बाजार में धूर्तों का कार्य विभेद और भ्रम खड़ा कर अपने छल-कपट को ज्ञान के रूप में प्रचारित कर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करना ही रहता है।

"मैं तुम्हें अनुयायी नहीं प्रज्ञावान बनाना चाहता हूँ, जिससे प्रत्येक परिस्थिति में स्वयं उचित निर्णय लेने में सक्षम बन सको।" -स्वामी चिन्मयानन्द जी

इस वाक्य में हिन्दुत्व का ही नहीं वास्तविक अर्थों में मनुष्य होने का यथार्थ भाव छुपा है। मननशीलता ही वास्तविक अर्थों में वही मानव का निर्माण करती है।

ऋग्वेद में कहा गया है 'मनुर्भव' अर्थात मनुष्य बनो। इसका स्पष्ट अर्थ है कि दो पैर पर चलने वाला हरेक व्यक्ति मनुष्य नहीं होता। उसे मनुष्य बनना पड़ता है और मनुष्य बनने के लिए मनन करना आवश्यक है। इस मंत्र में केवल यही नहीं कहा गया है कि मनुष्य बनो अपितु आगे यह भी कहा गया है कि "मनुष्य बन कर दिव्यता का सृजन करो" मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्" (Become the Human being create the divinity)

कोई भी विचार जो व्यक्ति के चिन्तन प्रक्रिया को प्रतिबन्धित करे वह मानवीय नहीं हो सकता। मानव के सोच को प्रतिबन्धित कर देने का परिणाम ही आज मजहबी आतंकवाद के रूप में विश्व के सामने खड़ा है। इसलिए वह हर पंथ और संस्था जो सोच को प्रतिबंधित करने की चेष्टा करती है वह अमानवीय है।

भारतीय परम्परा में गुरु, पंथ या संस्था का कार्य मनुष्य की सोच को परिष्कृत करना है न की उसे प्रतिबंधित करना। मनुष्यत्व की रक्षा के लिए सत्संग और सद्चिन्तन नितान्त आवश्यक है। हमारी परम्परा में अध्ययन, मनन और निदिध्यासन का विधान है अर्थात पहले सुनो, अध्ययन करो, फिर उसे समझो मनन करो और तब व्यवहार करो वरना सेमिटिक पंथों की तरह आपकी आत्मा की फसल दूसरे लोग काटते रहेंगे।

समाज में सद्भाव और समरसता

स्वामी विवेकानंद जी समाज में व्याप्त जाति- पात और उंच- नीच के भेद को मिटा करके संपूर्ण समाज में एक रूपता के साथ- साथ सद्भाव और समरसता के पक्षधर ही नहीं थे अपितु वे स्वयं भी ऐसा ही जीवन जीते थे ।

उनका मानना था कि दरीदा नारायण कि सेवा किये बिना न तो परमात्मा कि प्राप्ति संभव है और न ही मोक्ष का मिलना क्योंकि जो दरिद्र है जो गरीब है जो दुखी है वही मानव वास्तव में सच्चे रूप में परमात्मा का रूप है अर्थात जो इश्वर हमारे सामने प्रकट है उसको छोड़ के किसी और इश्वर की सेवा करना या आराधना करने का कोइए औचित्य नहीं है ।

सारांश

स्वामी विवेकानंद का मानना था कि शिक्षित होकर पहले स्वयं को बदलो एवं दरिद्रनारायण की सेवा करते हुए समाज के सभी लोगों को बिना किसी भेदभाव के शिक्षित करो। शिक्षा केवल अक्षर ज्ञान के लिए नहीं होती है वह तो व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए दी जाती है। आज जबकि हमारे देश में शिक्षा सुसंस्कृति की ओर न बढ़कर अपसंस्कृति की ओर बढ़ रही है, इसलिए स्वामी जी के शिक्षा संबंधी विचारों की प्रासंगिकता और भी अधिक बढ़ जाती है। जिस प्रकार से शिक्षा में नैतिकता का नितांत अभाव चल रहा है वैसी स्थिति में तो वामी विवेकानन्द जी के शिक्षा सम्बन्धी विचार और भी अधिक प्रासंगिक हो जाते है क्योंकि स्वामी जी का सर्वाधिक बल शिक्षा के माध्यम से मनुष्य को बलवान, चरित्रवान, निडर और नैतिक बनाना ही था ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. विवेकानंद साहित्य अद्वैत आश्रम द्वारा प्रकाशित।
2. ब्रह्मचारी अमल - स्वामी विवेकानंद जीवन और उपदेश।
3. स्वामी विवेकानंद व्यक्तित्व का विकास।
4. स्वामी विवेकानंद हम क्या चाहते हैं।
5. स्वामी विवेकानंद मेरा भारत अमर भारत रामकृष्ण मठ नागपुर।
6. स्वामी विवेकानंद हिंदू धर्म रामकृष्ण मठ नागपुर।